पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, अमृतचन्द्राचार्य कृत। इसकी पाँचवीं गाथा, इसका भावार्थ देखो! थोड़ा आ गया है परन्तु फिर से लेते हैं। **संसार कोई जुदा पदार्थ नहीं है।** व्यवहार और निश्चय की व्याख्या करते हैं। **इस आत्मा का परिणाम...** संसार किसे कहना? कि **इस आत्मा का परिणाम निश्चयनय के श्रद्धान से विमुख होकर,...** देखो! अकेली श्रद्धान से विमुख बात ली है। चैतन्यस्वरूप आत्मा, शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा के बोध से विपरीत बोध। इससे - श्रद्धा से विमुख होकर.... पाठ विमुख शब्द है सही न? **शरीरादिक परद्रव्यों के साथ...** शरीर, राग, भावकर्म, द्रव्यकर्म आदि। शरीर नोकर्म, **एकत्व श्रद्धानरूप होकर प्रवर्तन करे...** ये दोनों एक हैं — ऐसी श्रद्धा प्रवर्ते। आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव के साथ के भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्म की एकत्वबुद्धि से प्रवर्ते, इसका ही नाम संसार है। कहो, समझ में आया? **उसी का नाम संसार है।** दूसरा संसार नहीं, ऐसा। यह संसार है।

**मुमुक्षु :** कुन्दकुन्दाचार्यदेव का कहो।

**उत्तर :** हाँ; आज आचार्यपद का आरोहण (दिवस है)। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज को पोष कृष्ण अष्टमी को आचार्यपद (मिला) था। वह यह पोष कृष्ण अष्टमी है। महीना फर्क है। उनका यह कथन है, उनका यह कथन है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज उस समय में सन्तों में प्रमुख थे। संघ ने आज उन्हें आचार्यपद दिया था। पोष कृष्ण की अष्टमी।

www.vitragvani.com



शोभालालजी! यह पोष कृष्ण अष्टमी तुम्हारे हिसाब से। हमारे (गुजराती में) मगसर कृष्ण अष्टमी है। परन्तु पोष कृष्ण अष्टमी को आचार्यपद दिया, संघ ने मिलकर आचार्यपद दिया। फिर भगवान के पास गये थे। तब भगवान ने वहाँ कहा कि वहाँ भरतक्षेत्र के ऐलाचार्य। संघ मिलकर दे - आचार्यपद दे। ये सब आचार्य हैं। साधु तो होवे, भावलिंगी साधु होवें, फिर आचार्यपद दे, फिर आचार्यपद मिले। ये संघ के प्रमुख हैं — ऐसी स्थापना करे।

**मुमुक्षु :** कुन्दकुन्दाचार्यदेव को आचार्यपद मिला।

**उत्तर :** आज मिला। आज पोष कृष्ण अष्टमी है। संघ ने एकत्रित होकर उन्हें आचार्यपद दिया, वह आज की तिथि है। फिर भगवान के पास गये थे, फिर ये शास्त्र रचे हैं। देखो! उनकी ११ वीं गाथा (समयसार की) है, उसका ही यह शब्द है। यहाँ अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं वह) ही भाव और वही वस्तु है। गाथा भी यही वहाँ की है। समझ में आया? आचार्य स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं।

आचार्यपद प्राप्त (ऐसा कहते हैं) कि संसार उसे कहना कि आत्मा के निश्चय शुद्ध चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और आचरण से विरुद्ध शुद्ध चैतन्यस्वरूप, शुद्ध चैतन्यस्वभाव ऐसा आत्मा, यह स्वभाव, ऐसा आत्मा, हों! शुद्धस्वभाव, शुद्ध चैतन्यभाव ऐसा आत्मा, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति अर्थात् आचरण से विपरीत जितना परिणाम शरीर, राग, पुण्य, विकल्प आदि मेरे हैं — ऐसी जो मान्यता, उसे यहाँ आचार्य महाराज, संसार कहते हैं। कहो! यहाँ इन स्त्री-पुत्र को संसार नहीं कहते। राजमलजी! पैसा और यह संसार नहीं, ये सब तो निमित्त हैं। अशुद्ध उपादान का भाव, व्यवहारनय का अकेला बोध, निश्चय के भान रहित — ऐसे बोध को यहाँ (विपरीत बोध कहा है)। व्यवहार से विरुद्ध नय से विरुद्ध-विमुख अर्थात् व्यवहार रगाादि मेरे, विकल्प आदि मेरा, शुभस्वरूप, वह मैं, कर्म वह मैं, शरीर वह मैं — ऐसे एकत्व श्रद्धानरूप प्रवर्ते। देखा? **एकत्व श्रद्धानरूप होकर प्रवर्तन करे उसी का नाम संसार है।** उसका हो नाम महान दोष है। भूल, संसार है! भ्रम, वह संसार है। भ्रम कैसा? कि शुद्ध चैतन्य अभेद अखण्ड स्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान से विमुख अकेले पुण्य-पाप के विकल्प, दया, दान, व्रत आदि के भाव;

www.vitragvani.com



शरीर-कर्म, वह मेरे; उनमें एकत्वबुद्धि, वह एक ही विपरीत परिणाम निश्चयनय से विरुद्ध है, उसे यहाँ संसार महादोष कहते हैं। समझ में आया?

**इसलिए जो जीव संसार से मुक्त होने के इच्छुक हैं...** अब वापस इसका सारांश / सार लेना है न? बतलाकर भी करना है क्या? इसलिए जो संसार से... कोई भी आत्मा, संसार से अर्थात् इस प्रकार के परिणाम - पुण्य-पाप के परिणाम, शरीर आदि, कर्म आदि मैं — ऐसी जो मान्यता के मिथ्यात्व परिणाम संसार, उससे मुक्त होना चाहता है, उसे शुद्धनय के सन्मुख रहना योग्य है। उसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप — ऐसा आत्मा, उसके सन्मुख श्रद्धा-ज्ञान करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया? बहुत, यह तो संक्षिप्त में दोनों बातें आ गयी। संसार किसे कहना और जिसे मुक्ति चाहिए हो, संसार से छूटना हो, उसे क्या करना? — ये दोनों बातें संक्षिप्त में आ गयी। धर्मचन्दजी! आहाहा!

**मुमुक्षु :** अभी यही नहीं किया।

**उत्तर :** यह इसने नहीं किया; किया है वह उल्टा—पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म और शरीर। यहाँ तो भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म को अपना मानकर, उनमें एकत्व होकर, मिथ्या भ्रम को सेवन कर महादोषरूप संसार में भटका है, महादोषरूप संसार। कहो, न्यालभाई!

**इसलिए जो जीव संसार से मुक्त होने के इच्छुक हैं...** ऐसे निश्चयनय से विमुख, ऐसे जो संसार के परिणाम, उनसे छूटने का इच्छुक हो, **उन्हें शुद्धनय के सन्मुख रहना योग्य है।** अकेले महासिद्धान्त है! उसे तो स्वभाव शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा, परमानन्दस्वरूप आत्मा के सन्मुख रहना योग्य है कि जिससे पर को सन्मुखता का भाव मिट जाता है। पर की सन्मुखता का अर्थात् इससे (स्वभाव से) विमुखता का। लो! यहाँ तो आया था। अब यहाँ तो सन्धि करते हैं।

**वही बताते हैं। जिस प्रकार बहुत पुरुष...** जल का दृष्टान्त पहले (देते हैं)। जल... जल... बहुत मनुष्य, कादव के संयोग से जिसका अर्थात् पानी का निर्मलपना ढँक गया है **ऐसे गंदले जल को...** एक मेलवाले पानी को ही **जल को ही पीते हैं और कोई अपने हाथ से...** स्वयं। किसी को कहकर नहीं कि इसमें यह निर्मली औषधी

www.vitragvani.com



डालना। वह फिर कितनी डाले, कैसे डाले, कहाँ डाले? समझ में आया? एक ओर डाले, मध्य में न डाले, मध्य में डाले, समरूप हो, इसलिए स्वयं अन्दर डाले।

**मुमुक्षु :** इन सबको नौकर होते हैं?

**उत्तर :** नौकर भी सब ठिकाने बिना के होते हैं; स्वयं करना - ऐसा कहते हैं। वह काम कमजोर कर डाले। यह तो **अपने हाथ से कतकफल (निर्मली) डालकर कीचड़ और जल को अलग-अलग करता है।** पानी-जल स्वच्छ, निर्मल पीने के लिये। समझ में आया? **वहाँ निर्मल जल का स्वभाव ऐसा प्रकट होता है...** देखो अब! मेलरहित, उसमें निर्मल औषधि डालने से, **निर्मल जल का स्वभाव ऐसा प्रकट होता है, जिसमें अपना पुरुषाकार प्रतिभासित होता है,...** स्वयं पुरुष उसमें -पानी में दिखे। ऐसा निर्मल, मेल गया, इसलिए ऐसा दिखता है। **उसी निर्मल जल का वह आस्वादन करता है।** कहो! कितना निर्मल हुआ? कहते हैं, जिसमें पुरुषपने का आकार दिखे, आकार, हों! मुँह और ऐसा सब दिखे, इतना निर्मल है - ऐसा बताना है। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है, हों! सिद्धान्त तो ऊँचा है।

**जिसमें अपना पुरुषाकार...** अपने देह का पुरुषपना दिखायी दे, उसमें प्रतिभासित हो। **ऐसे निर्मल जल का वह आस्वादन करता है।** यह दृष्टान्त हुआ।

**उसी प्रकार बहुत से अज्ञानी जीव, कर्म के संयोग से जिसका ज्ञानस्वभाव ढँक गया है...** कर्म के संग में गया हुआ जीव, इसे उसका संयोग है। फिर इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि कर्म के कारण ज्ञानस्वभाव ढँक गया है। इसमें से वापस यह निकालते हैं। इसका अर्थ यह कि कादव का संग पानी ने किया है, इसी तरह इसने संग किया है। कर्म के संयोग से स्वभाव को भूलकर...। कर्म के संयोग, परवस्तु के सम्बन्ध से जिसका अर्थात् आत्मा का **ज्ञानस्वभाव ढँक गया है...** शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञानस्वभाव, इसकी दृष्टि में नहीं आता। कर्म के संयोग के सम्बन्ध में अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप ढाँक दिया है, स्वयं ने। समझ में आया?

**ऐसे अशुद्ध आत्मा का अनुभव करते हैं।** ऐसे जैसे मेलवाला पानी अनुभवता है, वैसे मेलवाले आत्मा को अनुभवता है, यही मिथ्यात्वभाव है। कहो, समझ में आया

www.vitragvani.com



इसमें ? भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप आत्मा, शुद्धस्वभाव आत्मा को मेलपने अनुभव करता है, यही मिथ्यात्व और भ्रम है। समझ में आया ? **अशुद्ध आत्मा का अनुभव करते हैं।** पूरी संक्षिप्त व्याख्या ! भगवानस्वरूप, इसका जो शुद्ध भूतार्थ चैतन्यस्वभाव, शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... पवित्र स्वभाव ऐसा आत्मा, उसे अनुभव न करके, कर्म के संग में पड़ा; मेल को उत्पन्न करके, यह अशुद्ध ऐसे मेलवाला आत्मा है, इस तरह उसे वह मेलवाला अनुभव करता है, अर्थात् अशुद्ध अनुभव करता है। अशुद्ध अनुभव करता है, यही मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। कहो, समझ में आया ?

**कुछ...** अब सुलटी बात। **कुछ (ज्ञानी जीव) अपनी बुद्धि द्वारा....** गुरु ने कहा, शास्त्र ने कहा, देव ने कहा कि शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, वह तेरा है; मेलपना (मलिनता) है, वह तेरा स्वरूप नहीं – ऐसा कहा; इसने झेला। इसलिए कहते हैं कि **जीव अपनी बुद्धि द्वारा...** वापस सामनेवाले की बुद्धि द्वारा नहीं। **कुछ आत्मा अपनी बुद्धि से शुद्धनिश्चयनय के स्वरूप को जानकर....** शुद्ध निश्चयनय का स्वरूप अर्थात् शुद्ध आत्मा यह है – ऐसा जानकर, **कर्म और आत्मा को भिन्न–भिन्न करते हैं,...** अर्थात् कर्म का लक्ष्य छोड़कर चैतन्य के लक्ष्य में आता है। यह पृथक् करता है, उसका अर्थ यह हुआ न ? समझ में आया ?

ऐसे जो (पर के) लक्ष्य में एकत्व था, उसे पर के लक्ष्य से छूटकर, स्व के लक्ष्य में आता है, वह **कर्म और आत्मा को भिन्न–भिन्न करते हैं,...** इसका अर्थ ऐसा नहीं कि यह कर्म है और मैं आत्मा हूँ। इसका अर्थ कि यह कर्म है और आत्मा – ऐसे दो लक्ष्य रहे, तब तक तो अभी विकल्प है और एकत्वबुद्धि है; परन्तु इसका अर्थ यह कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, ऐसा आत्मतत्त्व और अशुद्धता, वह संयोग से उत्पन्न हुई (मलिनता), उसका लक्ष्य छोड़कर, आत्मा के अन्तर शुद्धस्वरूप ऐसा जो आत्मा, उसके सन्मुख होकर एकाग्र हुआ, इससे उसे कर्म और आत्मा दो पृथक् हुए। कहो, समझ में आया इसमें ?

यह मूल रकम की बात है, मूल रकम ! सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्म की प्रथम दशा; सुखी होने की, स्वतन्त्र होने की, सत् के पूर्णस्वरूप की शरण में जाने की पहली दशा

www.vitragvani.com



यह है कि पहले ज्ञान में धारणा करे कि यह वस्तु एक शुद्ध चैतन्यस्वरूप भिन्न है और मलिन परिणाम, पर के संग से हुए — ऐसा यह ख्याल करे। ख्याल करके फिर उनका लक्ष्य छोड़कर चैतन्य के शुद्धस्वरूप पर जाए, तब आत्मा और कर्म - दो भिन्न पड़े — ऐसा कहने में आता है। यह धार्मिक क्रिया कहलाती है। वे कहते हैं - ऐसे भगवान के सामने देखकर समकित होता है, भगवान के दर्शन से समकित होता है, प्रतिमा के दर्शन से (समकित होता है); कल ही 'जैन गजट' में आया है, किसी आर्यिका ने कहा, बस! ऐसे होता है, इसका ऐसे होता है। 'धवल' के पहले अध्याय का उसने ऐसा पकड़ा है।

जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म के टुकड़े-चूरा उड़ जाता है... परन्तु ऐसे सामने देखकर चूरा उड़ता होगा या ऐसे सामने देखकर? परन्तु चूरा किस प्रकार उड़ता होगा? जब तक उसके सन्मुख देखे, तब तक तो उनका आदर है। यहाँ अन्दर सन्मुख देखे, तब इसका (स्वभाव का) आदर होता है। क्या हो? परन्तु ऐसी बात को छोड़ दिया है और लोगों को गड़बड़ में (रख दिया है)। बेचारे को पीछे हटना, वह ठीक है, यह रुचि में नहीं आता। इसलिए ऊपर कहा था न? **शुद्धनय के सन्मुख रहना योग्य है।** ऐसा कहा था। उसका यह स्पष्टीकरण-खुलासा करते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा, यह शुद्ध चैतन्य निर्मल निर्मलानन्द प्रभु आत्मा के अन्तर सन्मुख होकर; जो मलिन परिणाम (पर) संग से हुए, उनके लक्ष्य को छोड़कर, दो के बीच भिन्न हुआ, अर्थात् जो एकत्वबुद्धि अकेली परलक्ष्य में थी, वह स्वलक्ष्य में आया तो एकत्वपना मिटा, अर्थात् भिन्न हो गया, ऐसा। समझ में आया?

**कुछ अपनी बुद्धि...** लो! यह साधन कहा, फिर कोई कहता है न! साधन द्वारा... द्वारा। ऐ..ई..! करण, करण। कोई करण चाहिए न? सुन न भाई! करण है, देखो न! आहाहा! अपने ज्ञान में, ज्ञान की बुद्धि द्वारा ऐसे अन्तर (में) झुकाना, बुद्धि द्वारा अन्तर (में) झुकाना, यह करण हुआ, साधन है। वह शुभविकल्प तो मेल है। मेल से पृथक् पड़ने में वह मेल / विकल्प साधन कैसे हो? समझ में आया? पंचास्तिकाय में बहुत जगह लिखा है, भाई! व्यवहार, साधन; निश्चय, साध्य। यह तो निमित्त को व्यवहाररूप से कहा

www.vitragvani.com



है। इसके राग की रुचि और मलिनता का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव-सन्मुख जाए, तब सम्यग्ज्ञान हो, तब उस राग की मन्दता को पूर्व की अपेक्षा से साधन कहा जाता है; वर्तमान रहे, उसे भी साधन व्यवहार से कहा जाता है, ऐसा है। समझ में आया?

बात ही पहले अभी तो क्या सत्य है — इसकी बात सुनी नहीं। सुने तो इसे अन्दर से यह हाय... हाय...! यह सब उड़ जाता है मेरे। उड़ाना है या नहीं तुझे? सच्चा करना है और खोटा उड़ाना है या नहीं? कहते हैं, भाई! तुझे सत्य चाहिए हो, सुखी होने की राह लेना हो तो, अन्तर में जो मलिन परिणाम पर तेरी दृष्टि, रुचि और एकता का भाव है, ऐसा जो संसार है - ऐसा कहा न? उसके परिणाम से दृष्टि उठा; स्वभाव चैतन्यस्वरूप आत्मा भगवान है, उसके सन्मुख हो तो कर्म अर्थात् मलिनता और निर्मल, दोनों अलग पड़ जाएँगे। समझ में आया? (स्व) सन्मुख निर्मलता होने में मलिनता साथ में नहीं रहेगी। समझ में आया?

चैतन्य शुद्धस्वरूप ऐसा आत्मा, उसे वर्तमान बुद्धि द्वारा अन्तर में जाने पर यह मेल और वह दोनों अलग पड़ गये, साथ में नहीं रहे। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म परन्तु! यदि रुपये देकर कुछ हो जाता हो न! सेठ! साठ-सत्तर लाख, करोड़ में से पाँच लाख दे दें, ले न! यदि धर्म होता होवे तो। धूल भी नहीं होता। क्या हो? आहा! रुपये तो अजीव हैं, उनसे तो पृथक् पड़ना है। उस अजीव की ओर के राग से पृथक् पड़ना है। इस अजीव के प्रति का कोई मन्दराग करके दया, दान के परिणाम हुए, ऐसे राग से भी पृथक् पड़ना है। अब पृथक् पड़ना है उसे शामिल रखकर कैसे हो? समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! यह शास्त्र का बोध जो परलक्ष्यी विकल्प, इससे भिन्न पड़ना है, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! विकल्प की, देव-गुरु की व्यवहार श्रद्धा जो है, यहाँ तो उससे भी पृथक् पड़ना है। समझ में आया?

जहाँ दिशा-फर्क है, परदशा तरफ का राग है, उसे इस दशा की तरफ के झुकाव में उसका साथ कैसे हो? माँगीरामजी! क्या है? गजब बात कठिन। प्रभु! साधु बेचारे उलझ गये। ऐसा चाहिए, वैसा चाहिए और अमुक चाहिए। भाई!....दूसरा क्या करें? ये तो मानते हैं और सबको अनादि से (रुचता है)। यह करें, यह सब करें, यह त्याग करें,

www.vitragvani.com



व्रत पालें, भक्ति करें, ऐसे मन्दिर बनावें और पूजा करावें, व्रत पालन करावें, शान्तियज्ञ... क्या कहलाता है ? शान्तिस्तोत्र, शान्तितात्र — ऐसा सब करावें तो साधन हो तो प्रगटे... । अरे.. भगवान ! क्या हुआ ? भाई ! अब इसमें मेरे कहे क्या कहने की जरूरत ? तुम जो आये थे पूछने, इसमें तो तुम ही मानते हो कि ऐसा है। अब इसमें मेरे कहने का क्या रहा ? साधु आये थे। 'पालेज'... महात्माजी ! ऐसा करके आये थे, बैठे थे। बताओ कुछ कि आत्मा कैसे ज्ञात हो ? ऐसा पूछा था। मैंने पूछा कि भाई ! देखो ! आत्मा ऐसे ज्ञात नहीं होता, ऐसे करते-करते ज्ञात नहीं होता। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, यहाँ क्या कहते हैं ? जो अशुद्ध आत्मा का अनुभव करता है; उसे अब जब आत्मा का ज्ञान करना है, अर्थात् धर्म करना है, उसे क्या करना ? अन्तर में पहले ज्ञान में यह चीज क्या है, और यह चीज क्या है — ऐसे विकल्पसहित, विकल्पसहित उसका ज्ञान करना। यह ज्ञान करके अब उसे अन्तर से उस बुद्धि को अन्तर में झुकाना, तब मेल और आत्मा दो पृथक् पड़े अर्थात् कर्म और आत्मा दो पृथक् पड़ जाएँ। समझ में आया ? यह सूक्ष्म बातें और यह हमारे से होगा नहीं, हमारे से होगा नहीं, तब फिर तुझे करना है सच्चा; अब यह न हो और करना सच्चा, दोनों कैसे बनेंगे ? इसी प्रकार धर्म किया जाता है, दूसरे प्रकार से कोई धर्म है नहीं। तीन काल-तीन लोक में वीतराग परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के पंथ के मार्ग में दूसरा कोई मार्ग है नहीं। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** अनादि का सम्बन्ध टूट जाए।

**उत्तर :** सम्बन्ध है ही नहीं। एक समय का है। अनादि का - प्रवाह से बात है। कहो, समझ में आया ? एक समय के सम्बन्ध में पड़ा है, वहाँ तोड़ ऐसे जाकर, कहते हैं। आहाहा ! जो जोड़ा है, वह तू तोड़; जोड़े, वह तोड़े। ऐसे राग और पर के साथ लक्ष्य वहाँ करके एकत्वबुद्धि में तू पड़ा है, ऐसे चैतन्य के शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा के साथ इन रागादि की एकत्वबुद्धि करके तू स्वयं पड़ा है। अब बुद्धि की निर्मलता द्वारा अन्तर में सन्मुख हो ! कर्म और आत्मा पृथक् पड़ने पर **तब निर्मल आत्मा का स्वभाव ऐसा प्रगट होता है....** वहाँ निर्मल आत्मा का स्वभाव। देखो ! यहाँ स्वभाववान और स्वभाव

www.vitragvani.com



– ऐसा लेना है न? यह निर्मल आत्मा का स्वभाव, ऐसा। ऐसा प्रगट होता है, ऐसा। आत्मा प्रगट होता है – ऐसा नहीं; आत्मा का स्वभाव (प्रगट होता है।) समझ में आया?

**निर्मल आत्मा का स्वभाव ऐसा प्रगट होता है जिसमें अपने चैतन्यपुरुष का आकार प्रतिभासित हो जाता है।** अर्थात् कि जिसमें चैतन्यस्वरूप ही भासित हो, ऐसा। जैसे पहले राग और पुण्य और पाप भासित होते थे, वे मलिन परिणाम–संसार के परिणाम, निश्चयनय से विमुख परिणाम, उनमें तो मलिन ही भासित होता था। समझ में आया? भगवान आत्मा! यह कुछ बातें करे और कुछ मिले – ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह कुछ बहुत पठन करने से भी मिले, ऐसा नहीं है। इसमें कोई ज्यादा तपस्यायें करे तो मिले, ऐसा भी नहीं है। इसमें कोई दान बहुत करे या मौन रहकर बैठा रहे तो मिले, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

ऐसा भगवान शुद्ध चैतन्य पूर्ण स्वभाव से भरपूर तत्त्व, उसे अन्तर्मुख की दृष्टि–बुद्धि द्वारा करने पर दो पृथक् होने पर एक चैतन्य शुद्धस्वरूप, ज्ञान में उसका स्वरूप ज्ञात होता है। उसे आकार ज्ञात होता है – ऐसा कहा गया है। यह शुद्ध चैतन्यस्वरूप है – ऐसे ज्ञान में ज्ञात हो। यह शुद्ध चैतन्यस्वरूप है – यह ज्ञान जाने। यह वस्तु शुद्ध चैतन्य है, शुद्ध चैतन्य है, उसके समीप में गया तो शुद्ध चैतन्य है – ऐसा ज्ञान में भासित हुआ। **अपने चैतन्यपुरुष का...** चैतन्य पुरुष का। समझ में आता है न? **आकार प्रतिभासित हो जाता है।** चैतन्य पुरुष का, अर्थात् स्त्री का आत्मा फिर दूसरा होगा? इस चैतन्य पुरुष का आकार ऐसा भासित होता है। ऐई... धर्मचन्दजी! और स्त्री का? चैतन्य पुरुष अर्थात् चैतन्य आत्मा; उसका आकार अर्थात् स्वरूप।

**मुमुक्षु :** उसका क्षेत्र।

**उत्तर :** क्षेत्र–फेत्र कुछ नहीं। जो ऐसे मलिन भासित होता था, मलिन का भास–अनुभव था, वह संसार था। उसका लक्ष्य छोड़कर, ऐसे चैतन्यस्वरूप के सन्मुख होकर गया, वहाँ वह अपना चैतन्य शुद्धस्वरूप ज्ञान में भासित हुआ। यह बहुत सरस बात है! देखो! आज कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की आचार्य आरोहण तिथि है। समझ में आया? ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो पंचम काल में तीर्थंकर जैसा कार्य किया है। अमृतचन्द्राचार्य

www.vitragvani.com



ने गणधर जैसा (कार्य किया है।) देखो न! एक अमृतचन्द्राचार्य के श्लोक, उनका अपना बनाया हुआ है। ओहो! '**प्रायः भूतार्थबोधविमुखः सर्वोऽपि संसारः**' 'मक्खनलालजी' ने संसार सब अर्थ किया है। सब संसार व्यवहारनय की समझ से विरुद्ध है - ऐसा लिया है। समझ में आया? संसारी जीव व्यवहारनय के बोध से विमुख है, क्योंकि संसार यह है, यह है, इसके बोध से विमुख है — ऐसा अर्थ किया है। यह स्वयं परिणाम ही सर्व संसार है। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्य शुद्धस्वरूपी प्रभु का बोध, उससे विपरीत अर्थात् अकेले राग, पुण्य, दया, दान, विकल्प, कर्म, शरीर का बोध, एकत्व परिणाम, इस बोध के परिणाम अज्ञान के, उन्हें यहाँ मिथ्यात्व कहते हैं और उसे यहाँ संसार कहते हैं। वह संसार है। निगोद में यह संसार और नौवें ग्रैवेयक में गया हुआ मिथ्यादृष्टि साधु था और गया था, उसे यह संसार है। समझ में आया? उसमें ये दो स्वरूप दो हैं। एक मलिन, कर्म और शरीर तथा निर्मलानन्द प्रभु आत्मा। एक ओर आत्माराम तथा एक ओर मलिन आदि सब समूह। दोनों की एकता का भाव जो अनादि का था, वह संसार था। उसे अन्तर्मुख में अपनी बुद्धि द्वारा अंश में वर्तमान मलिन के लक्ष्य में जो पड़ा था, उसमें से हटकर बुद्धि को अन्तर्मुख चैतन्यस्वभाव शुद्ध भगवान आत्मा की ओर झुकाने पर दोनों भिन्न पड़े और ज्ञान में चैतन्य पुरुष का स्वरूप ज्ञात हुआ।

**इस प्रकार वह निर्मल आत्मा का स्वानुभवरूप आस्वादन करते हैं।** आहाहा! ऐसे निर्मल आत्मा को। देखो! निर्मल स्वभाव कहा न? स्वभाव ऐसे आत्मा को। **स्वानुभवरूप...** स्व-अनुभवरूप, अपने ही अनुभवरूप अन्दर अनुसरण कर होता आनन्द का आस्वाद लेता है। आत्मा को स्व-अनुभवरूप आस्वादता है। इस आत्मा को स्व-अनुभव से अतीन्द्रिय के आनन्द का आस्वाद लेता है। दो बातें की (हैं) — ज्ञान की निर्मलता में स्वरूप प्रकाशित हुआ, चैतन्य पुरुष का आकार प्रतिभासित हुआ। भाई! दो बातें (की)। भगवान आत्मा अपने अन्तर शुद्ध स्वरूप की ओर ढलने पर उसके ज्ञान में चैतन्य पुरुष का स्वरूप प्रकाशित हुआ और प्रकाशित होने में उसे वेदन करते-अनुभव करते आनन्द को-अतीन्द्रिय आनन्द को साथ में आस्वादता है। आहाहा! यह इसका नाम

www.vitragvani.com



आत्मा जाना और सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! यह बात सूक्ष्म बहुत परन्तु भाई! साधारण को क्या करना? पूरे दिन धन्धा करना, व्यापार करना; उसे यह झट समझ में आये, ऐसी कोई विधि होगी? पूरे दिन व्यापार-धन्धा, फुर्सत नहीं मिले (उसे) थोड़े समय में समझ में आये, ऐसी (कोई बात है)? परन्तु थोड़े में यही बात है। समझ में आया? इसके बिना दूसरा प्रकार सुखी होने का तीन काल में नहीं है। सब दुखी होने के मार्ग हैं। दुःखी होगा यह? शान्तिभाई! ७००-८०० का वेतन आवे, अकेला है, विवाह करना नहीं। अब ऐसे सुखी नहीं कहलायेंगे? सुखी कहलायेंगे या नहीं? पैसा-वैसा एकत्रित होवे तो भाईयों की आधीनता मिटे। आहाहा! कहते हैं कि यह सब तो भिखारीपन है। यह बादशाही तो यहाँ आत्मा में है। समझ में आया?

भगवान आत्मा, जिसे शुभविकल्प की भी जरूरत नहीं, गरज नहीं - ऐसा कहते हैं। पैसा नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं, शुभविकल्प की भी गरज नहीं। एक गरज रही शुद्ध चैतन्यस्वरूप (के) सन्मुख होकर रहना यह। तब इसे बादशाह चैतन्यस्वरूप ज्ञान में प्रकाशित हुआ। तब उसे ज्ञान में चैतन्यस्वरूप प्रकाशित होने पर, इसका मूल जो आनन्द स्वाद, वह प्रगटरूप ज्ञान की पर्याय था, परन्तु आनन्दरूप प्रगट नहीं था और प्रगटरूप ज्ञान में जो अनादि से रागादि प्रकाशित करता था, प्रगटरूप ज्ञानपर्याय में यह रागादि ज्ञात होते थे; वह ज्ञान ऐसे झुकने पर चैतन्यस्वरूप प्रकाशित हुआ और आनन्द का अंश तो जरा-सा भी था नहीं, आकुलता थी... समझ में आया? परसन्मुख में ज्ञान के अंश में मलिनता और कर्म, शरीर से एकत्वपना भासित होता था और आकुलता थी। इस चैतन्य की अन्तरबुद्धि द्वारा अन्तर में जाने से, शुद्ध चैतन्यस्वरूप को पकड़ने से, मेल और कर्म एक ओर, भगवान दोनों पृथक् पड़ने पर अपने ज्ञान में यह शुद्ध स्वरूप है — ऐसा प्रकाशित हुआ। पहली पर्याय में वह (कर्मादि) प्रकाशित होता था; इस पर्याय में यह प्रकाशित हुआ और जो ज्ञान, जो आकुलता थी, उसके बदले यहाँ ज्ञान के प्रकाश में - चैतन्यस्वरूप प्रकाश में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद अनुभव में आया। उसे आत्मा जाना कहा जाता है और उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! योगेशभाई! बातें बहुत सूक्ष्म! तुम्हें सुनने को भी मिले नहीं, वहाँ कमाने में और अमुक में। कहो, समझ में आया? भगवान भाई! ऐसी

www.vitragvani.com



बात भी सुनी नहीं थी भावनगर में किसी दिन। इतने वर्ष में प्रौषध, प्रतिक्रमण और सामायिक कर-करके कचूमर निकल गया। परन्तु कहाँ जहाँ दिशा ही फर्क है, उसमें दिशा फर्क में मुट्ठी बाँधकर चलने लगा। जाना (है) पूर्व में और जाता है (ऐसे) पश्चिम में। बहुत दौड़ना, परन्तु किसकी ओर? ऐसी जहाँ दशा स्वसन्मुख होने की क्या है - इसका ही पता नहीं पड़ता; परसन्मुख से हटना है और स्वसन्मुख में आना है, इस बात का पता नहीं पड़ता, वह जाए कहाँ? समझ में आया?

अभी श्रद्धा में ही ऐसा होवे कि इस परसन्मुख में जो है, वह कुछ करते हैं, इसमें से कुछ कल्याण होगा... अब उस ओर से हटे कहाँ से और अन्दर आने की जरूरत है - ऐसी रुचि कहाँ से हो? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, गजब बात है! अभी यह सब कसदार बात है। पानी निकले और कह नहीं आता नीचे? कह समझे? कह, पानी को धोध निकलता है न नीचे, उसके ऊपर का होवे, उसे देखकर कहे कि - यह कह है - ऐसा कहे। 'कह' अर्थात् पानी का पूर जाता है। दो हाथ दूर हो तो भी समझ ले। कह, सुना है या नहीं? कह; जमीन में यह पानी निकलता है न? पानी निकलता है हो, उसे 'कह' कहते हैं। कह; यह जमीन ऐसी ऊँची हुई है और इस प्रकार की हुई है तथा नीचे कुछ गीला है, इसलिए ऐसी ऊँची हो गयी। नीचे पानी का धोध चला जाता है - ऐसा कहे। कह; इसी प्रकार इस चैतन्य पुरुष का 'कह' अन्दर पड़ा है, बड़ा। पहिचान ले और आनन्द को आस्वादे। आहाहा! यह धर्म की पद्धति है और यह धर्म प्राप्त करने की कला है, इसके सिवाय सब व्यर्थ-व्यर्थ है।

**मुमुक्षु :** सच्चा 'कह' तो यह बैठे तब कहलाये।

**उत्तर :** किसलिए, यह बैठाने के लिए कहा जाता है या? कहो, समझ में आया?

**अतः शुद्धनय कतकफल समान है,...** जैसे मलिन पानी में निर्मली औषधि डालने से पानी और मेल पृथक् पड़ जाते हैं; इसी प्रकार शुद्धनय-अन्तर्मुख का लक्ष्य करना, वह शुद्धनय कतकफल-समान हैं। मेल और निर्मल दोनों को भिन्न करता है। कहो, समझ में आया? शुद्धनय कतकफल है। शुद्धनय का विषय है, वही कतकफल है। उसकी ओर लक्ष्य जाते ही दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। **उसी के श्रद्धान से सर्वसिद्धि होती**

www.vitragvani.com



**है।** लो! इसके श्रद्धान से सर्वसिद्धि–मुक्ति–केवलज्ञज्ञन आदि इससे होते हैं; इसके अतिरिक्त दूसरे किसी उपाय से नहीं होते। समझ में आया?

**उसी के श्रद्धान से...** किसके श्रद्धान से? यह शुद्धनय का फल आया। शुद्धनय स्वभाव जो भगवान आत्मा, इसकी श्रद्धा हुई; पहली एकत्व श्रद्धा थी, राग–विकल्प आदि मेरे हैं अथवा उनसे लाभ होता है — ऐसा करके वहाँ पड़ा था न? उसकी एकत्वबुद्धि में अकेली संसार की सिद्धि और संसार का भटकना सिद्ध होता था। इसके स्वभावसन्मुख की दृष्टि होने पर, इसकी जो श्रद्धा हुई, शुद्धस्वभाव ही आत्मा है — ऐसी श्रद्धा हुई। भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव ज्ञान में जानने और आस्वादन लेने पर जो श्रद्धा हुई – ऐसा कहते हैं। अकारण जाने बिना – ऐसा नहीं। ज्ञान में जानने पर और आनन्द का आस्वाद लेने पर यह श्रद्धा हुई (कि) आत्मा शुद्ध त्रिकाल है। ऐसी **श्रद्धान से सर्वसिद्धि होती है।** इस श्रद्धान से चारित्र होता है, केवलज्ञान होता है, मुक्ति होती है; समस्त सम्पदा की प्राप्ति इस श्रद्धान से होती है। समस्त, समझे? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य सब। कहो, समझ में आया? राजमलजी! लो! तुम यहाँ आये और यह सब आया। आज माल–माल आया।

**मुमुक्षु :** सर्दी में माल–माल ही खावे न!

**उत्तर :** हाँ, बहुत पाक खावे। उड़द के खावे और मूसलीपाक खावे, सालमपाक खावे (तो) कह रहे। मर गये खाकर। ऊ..ऊ हो गया था जाओ! यह घबराहट कुछ अन्दर में ऊँ.. ऊ होता था। जाओ! उड़ो संसार में। आहाहा! बहुत मक्खन जैसी बात और बहुत सीधी व सरल बात है।

भगवान आत्मा अपने स्वभाव का पिण्ड प्रभु स्वयं, उसके सन्मुख से, उसके भान में और उसके आस्वादन में उसकी श्रद्धा हुई। बस! वह श्रद्धा सर्व शान्ति और सर्व सुख का मूल है। समझ में आया?

**आगे कहते हैं कि यदि एक निश्चयनय के श्रद्धान से ही सर्व सिद्धि होती है...** महाराज! आप तो, ऐसा भगवान शुद्धस्वरूपी प्रभु अनन्त–अनन्त शान्तरस और आनन्दरस का नाथ आत्मा स्वभाव है। उसके सन्मुख की यह श्रद्धा, निश्चय की श्रद्धा,

www.vitragvani.com



स्वाश्रय की श्रद्धा, स्व की श्रद्धा से यदि सर्व सिद्धि होती है, इससे यदि सर्व सिद्धि होती है; **तो फिर आचार्य व्यवहारनय का उपदेश क्यों करते हैं?** समझ में आया? प्रश्न ठीक है या नहीं? माँगीरामजी! आहाहा! बात तो बहुत असल बात है। नहीं? बहुत अनुभवी है न! पुराने है न, पुराने व्यक्ति है। दिल्ली। आहाहा! जगत को बेचारे को मिलती नहीं। त्यागी हुए, बाबा हुए, साधु हुए परन्तु बेचारे ऐसे के ऐसे... जाए, लोकबुद्धि में पड़े। संसार... संसार... वस्तु क्या है - (इसका) पता नहीं पड़ता। परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान से देखकर क्या श्रद्धा का स्वरूप कहा — इसका इसे पता नहीं।

(यहाँ) शिष्य ने पूछा कि प्रभु! इतना अधिक जब आप निश्चयनय के श्रद्धान से ही जब सर्व मुक्ति, मुक्ति (कहते हो), तो मुक्ति का एक ही कारण बताया। भगवान आत्मा, पर से-राग से, शरीर से, जड़ के क्रियाकाण्ड, विकल्प से छूटकर अपने स्वरूप में सन्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान करे; आपने उससे ही - निश्चय से ही सिद्धि कही तो इसमें व्यवहार तो कहीं आया नहीं? समझ में आया? तो **आचार्य व्यवहारनय का उपदेश क्यों करते हैं? उसका उत्तर - अर्थ इस गाथा में कहा है।** उसका उत्तर-अर्थ इस गाथा में कहा है। समझ में आया?

## गाथा - ६

अब जो श्रोता गाथा में कथित अर्थ के उपदेश को अंगीकार करने योग्य नहीं हैं उनका कथन करते हैं–

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वराः देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।।६।।

अज्ञानी को समझाने के लिए करें व्यवहार कथन।
जो केवल व्यवहार जानते उन्हें नहीं जिनराज वचन।।६।।

अन्वयार्थ : (मुनीश्वराः) ग्रन्थकर्ता आचार्य (अबुधस्य) अज्ञानी जीवों को (बोधनार्थं) ज्ञान उत्पन्न करने के लिये (अभूतार्थं) व्यवहारनय का (देशयन्ति) उपदेश करते हैं और (यः) जो जीव (केवलं) केवल (व्यवहारम् एव) व्यवहारनय को ही (अवैति) जानता है (तस्य) उसको–उस मिथ्यादृष्टि जीव के लिये (देशना) उपदेश (नास्ति) नहीं है।

टीका : 'मुनीश्वराः अबुधस्य बोधनार्थं अभूतार्थं देशयन्ति' – मुनीश्वर अर्थात् आचार्य अज्ञानी जीवों को ज्ञान उत्पन्न करने के लिये अभूतार्थ ऐसा जो व्यवहारनय, उसका उपदेश करते हैं।

भावार्थ : अनादि का अज्ञानी जीव, व्यवहारनय के उपदेश बिना समझ नहीं सकता; इसलिए आचार्य महाराज, व्यवहारनय के द्वारा उसको समझाते हैं। वही यहाँ बता रहे हैं। जैसे किसी म्लेच्छ को एक ब्राह्मण ने 'स्वस्ति' शब्द कहकर आशीर्वाद दिया, तो उसे उसके अर्थ का कुछ बोध नहीं हुआ और वह ब्राह्मण की तरफ ताकता रहा। वहाँ एक दुभाषिया उससे म्लेच्छ भाषा में बोला कि यह ब्राह्मण कहता है कि 'तेरा कल्याण हो,' तब आनन्दित होकर उसे म्लेच्छ ने आशीर्वाद अंगीकार किया। ठीक इसी प्रकार आचार्य ने अज्ञानी जीव को 'आत्मा' शब्द कहकर उपदेश दिया, तब वह कुछ नहीं समझा और आचार्य की तरफ देखता रह गया। तब निश्चय और व्यवहारनय के

www.vitragvani.com



ज्ञाता आचार्य ने व्यवहारनय के द्वारा भेद उत्पन्न करके (-गुण-गुणी आदि विवक्षा-भेद द्वारा) उसे बताया कि - जो यह देखनेवाला, जाननेवाला और आचरण करनेवाला पदार्थ है, वही आत्मा है, तब सहज परमानन्ददशा को प्राप्त होकर वह आत्मा को निजस्वरूप से अंगीकार करता है। इस प्रकार यह सद्भूत-व्यवहारनय का उदाहरण दिया।

आगे असद्भूतव्यवहारनय का उदाहरण देते हैं। जैसे घृत से संयुक्त मिट्टी के घड़े को व्यवहार से घी का घड़ा कहते हैं। यहाँ कोई पुरुष, जन्म से ही उसको घी का घड़ा जानता है। जब कोई पुरुष, घृत का घड़ा कहकर उसे समझाता है, तभी वह समझता है और यदि उससे मिट्टी का घड़ा कहकर सम्बोधन किया जाय तो वह किसी दूसरे कोरे घड़े को समझ बैठता है-घी के घड़े को नहीं। निश्चय से विचार किया जाय तो घड़ा मिट्टी का ही है परन्तु उसको समझाने के लिये 'घृत का घड़ा' कहकर ही सम्बोधन करना पड़ता है। उसी प्रकार यह चैतन्यस्वरूप आत्मा कर्मजनित पर्याय से संयुक्त है। उसे व्यवहार से देव, मनुष्य इत्यादि नाम से कहते हैं। अज्ञानी जीव अनादि से उस आत्मा को देव, मनुष्य इत्यादि स्वरूप ही जानता है। जब कोई उसे देव, मनुष्य वगैरह नाम से संबोधित करके समझावे, तभी समझ पाता है और यदि आत्मा का नाम चैतन्यस्वरूप कहे तो अन्य किसी परमब्रह्म परमेश्वर को समझ बैठता है। निश्चय से विचार करें तो आत्मा चैतन्यस्वरूप ही है परन्तु अज्ञानी को समझाने के लिये आचार्यदेव गति, जाति आदि के भेद द्वारा जीव का निरूपण करते हैं। इस तरह अज्ञानी जीवों को ज्ञान उत्पन्न कराने के लिये आचार्य महाराज व्यवहार का उपदेश करते हैं। 'केवलं व्यवहारं एव अवैति तस्य देशना नास्ति' - जो जीव केवल व्यवहार ही का श्रद्धान करता है, उसके लिए उपदेश नहीं है।

भावार्थ : निश्चयनय के श्रद्धान बिना केवल व्यवहारमार्ग में ही प्रवर्तन करनेवाले मिथ्यादृष्टियों के लिये उपदेश देना निष्फल है।।६।।

## गाथा ६ पर प्रवचन

अब जो श्रोता गाथा में कथित अर्थ के उपदेश को अंगीकार करने योग्य नहीं हैं उनका कथन करते हैं- समझ में आया? क्या कहा, समझ में आता है इसमें?

www.vitragvani.com



इस गाथा में दो बातें करेंगे कि निश्चयनय का आश्रय करना, स्वभाव की शुद्धता और वही श्रद्धा, वही श्रद्धा और वही ज्ञान, यही मुक्ति की सर्वसिद्धि का उपाय है। तो फिर आचार्यों ने व्यवहार का उपदेश किसलिए कहा? तो एक ही निश्चय करना चाहिए। दूसरा कि **श्रोता गाथा में कथित अर्थ के उपदेश को अंगीकार करने योग्य नहीं हैं...** कहते हैं, जो श्रोता अकेले केवल व्यवहार को ही जाननेवाले और व्यवहार को ही निश्चय माननेवाले हैं, वे श्रोता सत् को सुनने के योग्य नहीं है। समझ में आया?

**अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वराः देशयन्त्यभूतार्थम्।**
**व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।।६।।**

वाह! यह पुस्तक व्याख्यान में पहली बार पढ़ी जा रही है। यह तो गुजराती हुई, वह सब के हाथ में आवे, तब वाँचना न? समाधिशतक तो वाँचन हो गया है। यह वाँचन नहीं हुआ था। समझ में आया? अब तो सबके हाथ में है। बहुत छप गयी हैं। कितनी छपाई? कितनी? हरिभाई! ४१०० लो! बहुत छपाये। क्या कहते हैं? रखा है या नहीं रखा? अब इसका अन्वयार्थ।

**अन्वयार्थ : ग्रन्थकर्ता आचार्य...** शिष्य का प्रश्न था कि जब निश्चयनय के आश्रय से – श्रद्धा से सर्वसिद्धि होती है, आत्मा के धर्म की सिद्धि, शान्ति की सिद्धि, मुक्ति की सिद्धि – सब सिद्धि (होती है) तो फिर व्यवहारनय को कहने का कारण क्या? तो कहते हैं कि **ग्रन्थकर्ता आचार्य, अज्ञानी जीवों को ज्ञान उत्पन्न करने के लिये व्यवहारनय का उपदेश करते हैं...** उसे-अज्ञानी को वस्तु का पता नहीं है, इससे उसे अन्तर में भेद द्वारा, व्यवहार द्वारा उसे निश्चय समझाकर, निश्चय का ज्ञान कराने के लिये यह बात करते हैं। व्यवहार को बताते हैं निश्चय को प्रगट करने के लिये। व्यवहार को बताते हैं, व्यवहार रखने के लिये नहीं। समझ में आया?

**ग्रन्थकर्ता आचार्य अज्ञानी जीवों को ज्ञान उत्पन्न करने के लिये...** अब इसमें भी उल्टा विवाद लेना... देखो! व्यवहार के कारण ज्ञान होता है। अरे! सुन! क्या कहते हैं? इसे समझाते हैं कि जो यह आत्मा, दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह व्यवहार हुआ; 'यह आत्मा' — ऐसा करके उसका व्यवहार का लक्ष्य छुड़ाकर अभेद में जाने के

www.vitragvani.com



लिये व्यवहार कहते हैं। दो बोल लेंगे, सद्भूत व्यवहारनय और असद्भूत व्यवहारनय के दो दृष्टान्त देंगे। समझ में आया? अज्ञानी जीव को सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान आदि उत्पन्न कराने के लिये उसे व्यवहार से समझाते हैं। निश्चय से तो समझता नहीं। घड़े का दृष्टान्त है न? वह आयेगा। व्यवहार है, समझाने के लिये है; रखने के लिये नहीं। यह उसे समझाते हैं। वह समझता नहीं।

अकेला कोरा घड़ा समझता नहीं, उसे कहते हैं कि घी का घड़ा, वह घड़ा — ऐसा कहते हैं, परन्तु कहना है तो मिट्टी का घड़ा बताना है, परन्तु अकेला कोरा घड़ा देखा नहीं, इसलिए घी द्वारा उसे पहिचान कराते हैं। बतलाना है तो मिट्टी का घड़ा। इसी प्रकार यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, - यह व्यवहार कहो! व्यवहार। वह आत्मा — ऐसा कहकर वह निश्चय समझाते हैं। भेद डालकर समझाना है निश्चय, परन्तु यह भेद डालकर समझाने पर भी निश्चय समझाया — ऐसा यदि उसका लक्ष्य जाए और व्यवहार का लक्ष्य छोड़े तो व्यवहार उसे निश्चय से समझाया — ऐसा कहा जाता है।

देव, जीव, मनुष्य जीव... अकेला जीव तो देखा नहीं, अकेला जीव तो देखा नहीं। अभेद देखा नहीं, अकेला देखा नहीं। समझ में आया? अकेला अभेद चैतन्यस्वरूप कभी देखा नहीं; इसलिए उसे भेद से समझाते हैं कि जो यह आत्मा है न अन्दर? वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जो प्राप्त हो, तीन को प्राप्त हो, (वह आत्मा)। श्रद्धा कौन करता है? कि आत्मा। जानता कौन है? कि आत्मा। लीनता कौन करता है? कि आत्मा, ऐसे। तीन के भेद द्वारा-व्यवहार द्वारा उस अभेद आत्मा को समझाते हैं। अनादि से अकेला अभेद समझा नहीं, इसलिए भेद द्वारा समझाने के लिये, व्यवहार द्वारा समझाने के लिये, निश्चय का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार द्वारा बात की है, परन्तु उस व्यवहार को ही पकड़े कि व्यवहार से निश्चय का ज्ञान होता है न, इसलिए व्यवहार सच्चा है। यह पकड़ता है, उसे तो कहते हैं कि देशना के योग्य नहीं है।

हमने व्यवहार द्वारा निश्चय को समझाने के लिये यह बात (की है), क्योंकि तू अकेला पृथक् अभेद कभी समझा नहीं और देव, मनुष्य आत्मा, मनुष्य आत्मा, एकेन्द्रिय आत्मा, दो इन्द्रिय आत्मा, केवली का आत्मा, सयोगी आत्मा, अयोगी आत्मा — ऐसे भेद

www.vitragvani.com



करके तुझे समझाते हैं; समझाना है वह (अभेद) आत्मा; परन्तु तू कभी योग बिना का आत्मा, देव बिना का आत्मा, मनुष्य बिना का आत्मा तूने देखा नहीं, इसलिए तुझे इनके द्वारा कहना है वह और पकड़ बैठे कि लो! तुमने व्यवहार का कहा था न कि देव, वह आत्मा, मनुष्य, वह आत्मा... परन्तु मनुष्य, वह आत्मा (– ऐसा) कहकर, वह आत्मा छुड़ाने – मनुष्यपना छुड़ाकर वहाँ ले जाने को कहा था। उसके बदले व्यवहार के कथन पकड़कर उसे ही मानता है। अब वह तो जो हेतु कहने का है, वह पकड़ने की योग्यता नहीं, उसे देशना देकर क्या लाभ? समझ में आया? वह तो झगड़ा ही खड़ा करेगा। देखो! व्यवहार की जरूरत पड़ी या नहीं? व्यवहार आया या नहीं? व्यवहार आया या नहीं? निमित्त अपने या नहीं? अरे...! भगवान! आया, वह आया किसलिए? वह व्यवहार उसे (निश्चय को) बतलाने के लिये है। व्यवहार, व्यवहार को बतलाने के लिये अथवा व्यवहार, व्यवहार को रखने के लिये नहीं। समझ में आया?

**जो जीव केवल व्यवहारनय को ही जानता है...** ऐसा क्यों लिया? पहला व्यवहार का भेद पाड़कर कहना, देव आदि से कहना वहाँ पकड़े। लो! तब तुमने कहा न, तुमने कहा न, तुमने कहा या नहीं? भाई! हमने कहा, परन्तु किस अपेक्षा से? वह निश्चय समझाने के लिये भेद पाड़ा था। उसके बदले तू वहाँ पकड़े! समझ में आया? कहते हैं कि वह देशना के सुनने योग्य नहीं है। आहाहा! जो कहने का आशय है, उसे न पकड़कर, व्यवहार से कहा, वहाँ व्यवहार को ही पकड़ा। आया या नहीं व्यवहार? आया या नहीं व्यवहार? व्यवहार के बिना समझा सकते हैं? गणधर भी कहते हैं, व्यवहार का आश्रय लेकर हम जगत को समझाते हैं, क्योंकि उससे बहुत जीव समझेंगे। लो! 'धवल' में ऐसा आता है। इसका अर्थ कि जीवों को, भेद किये बिना (कहा नहीं जा सकता।) देख भाई! यह एकेन्द्रिय, वह जीव; अकेला जीव कहे तो फिर चैतन्यस्वरूप, वह आत्मा, चैतन्यस्वरूप, वह आत्मा। फिर कोई ऐसा (समझेगा कि) परमेश्वर होगा, वह होगा। चैतन्यस्वरूप, वह आत्मा कहने पर और कोई दूसरे भगवान होंगे। इसका आत्मा, ऐसा यह नहीं समझता। समझ में आया न? अन्दर अर्थ में कहेंगे। चैतन्यस्वरूप, वह आत्मा — ऐसा यदि कहे तो फिर कोई परब्रह्म या परमात्मा को समझ ले। क्योंकि अकेला चैतन्यस्वरूप पृथक् तो

www.vitragvani.com



जाना नहीं। कोरा घड़ा तो किसी दिन देखा नहीं। कोरा समझे न? मिट्टी का अकेला (घड़ा)। घी वाला, पानीवाला और तेलवाला और ऐसे आटावाला — ऐसा घड़ा देखा है; इसलिए फिर उसके द्वारा इसे पहिचान कराते हैं। समझ में आया? परन्तु बतलाना है घड़ा। घी या आटावाला घड़ा कहकर कहीं घी या आटा में उसे अटकाना नहीं है। वहाँ वह कहता है — देखो! तुमने कहा था न घी का घड़ा?

पंचेन्द्रिय जीव, मनुष्य जीव, बादर जीव, सूक्ष्म जीव, पर्याप्त जीव, अपर्याप्त जीव, देखो! तुमने कहा था न पर्याप्त जीव? परन्तु पर्याप्त कहकर, वह जीव कहना था। समझ में आया? पर्याप्तपना बतलाना नहीं था। समझ में आया? आहा! बहुत सरस बात है। श्लोक ऐसे रखे हैं। समयसार की शैली और शैली सब एक परन्तु इसकी पद्धति फर्क होता है। मूल चीज को पकड़ने के लिये।

दो बातें की हैं। एक तो आचार्य, अज्ञानी जीव को ज्ञान उत्पन्न करने के लिये व्यवहारनय का उपदेश करते हैं, यह बात की थी। आता है न? व्यवहार के बिना उपदेश नहीं होता। यहाँ वे आये थे न? सोलिसीटर, तब (संवत्) १९९७ की साल में। देखो! इसमें आया यह। क्या आया परन्तु वहाँ? देखो! व्यवहार (आया)। परन्तु व्यवहार के बिना उपदेश नहीं होता; भेद पाड़कर समझाना, इसके बिना दूसरा उपायस नहीं है - ऐसा आया है। व्यवहार से लाभ हुआ (-ऐसा) इसमें कहाँ आया? कहा। सोलिसीटर था। (संवत्) १९९७ में मन्दिर (का कार्य) चलता था न। चिमनलाल, तुम्हारे वीरचन्द कामदार का लड़का। कहो, समझ में आया? अरे भगवान! क्या हो? इसके लिये तो यह गाथा ली है।

**केवल व्यवहारनय को ही जानता है...** ऐसा बतावे, देखो! दयाभाववाला आत्मा, हिंसाभाववाला आत्मा — ऐसा कहे, परन्तु बताना है वह (शुद्ध-अभेद) आत्मा। दयाभाव और यह तो राग है। समझ में आया? यह दयालु जीव है — ऐसा नहीं कहते? यह क्रूर जीव है, यह क्रोधी जीव है, यह मानी है, यह गहरे—पेट हाथ न आवे—ऐसा मायावी है.. परन्तु यह मायावी कहकर बताना है वह (शुद्ध) जीव। वह जीव मायावी नहीं, जीव क्रोधी नहीं, जीव मानी नहीं, जीव कपटी नहीं, जीव लोभी नहीं। इसे इनके द्वारा वह

www.vitragvani.com



जीव बताना है। वह बताना है कि देख यह, यह नहीं। देखो! यह। समझ में आया? दयालु जीव, अर्थात् ऐसा कहकर कि दया का भाव, वह जीव नहीं; जीव तो उस दया के भावरहित स्वरूप वह जीव। इसके द्वारा उसे बतलाना है। समझ में आया?

**व्यवहारनय को ही जानता है...** 'केवल' शब्द पड़ा है न? **जो जीव केवल...** अकेले व्यवहार को जानता है; यह समझाना है, वहाँ जाता नहीं; व्यवहार को (पकड़कर रखता है)। **उसको–उस मिथ्यादृष्टि जीव के लिये उपदेश नहीं है।** वह उपदेश के योग्य नहीं है। इसका विस्तार करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)